भारतीय त्योहार व मन्दिर अर्थव्यवस्था : चोलों के विशेष संदर्भ में

डॉ. शाम्भवी दूबे
शोध छात्रा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

भारतीय मन्दिर में मनाये जाने वाले त्योहार धर्मपरायण हिन्दुओं के लिये उनकी धर्म परायणता की अभिव्यक्ति हैं क्योंकि हिन्दुओं में स्वभावतः प्राचीनकाल से ही प्रकृति व सृष्टि सृजनकर्ता के प्रति आभार व्यक्त करने की परम्परा रही है, जिसने शनैः–शनैः त्योहारों का रूप ले लिया और वो परम्परा हमारी संस्कृति में आज भी त्योहारों के स्वरूप में जीवित है। इन त्योहारों का स्वरूप प्रकृति तथा सामाजिक लोकाचार से उत्पन्न हुआ, जैसे वे प्राचीन काल में थे, जब हमारे समाज का सबसे महत्वपूर्ण अंग राजसत्तायें हुआ करती थी तथा शासकों के समान ईश्वर को भी सम्मान दिया जाता था। तत्कालीन समाज में ऐसा माना जाता था कि ईश्वर ही सम्राट है और उनके सम्मान में अनेक अनुष्ठान व त्योहार सम्पन्न करवाये जाते थे। मन्दिरों में मनाये जाने वाले त्योहार उस पुरातन समाज को प्रतिबिंबित करते हैं, जिसने उनको मनाना आरम्भ किया और आज भी वे उन प्राचीनतम परम्पराओं का पालन करते आ रहे हैं। हिन्दू धर्म अनेक त्योहारों का संयोजन है, जिसके अन्तर्गत हिन्दू धर्म के लोग विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान, पूजा, प्रार्थना, दीपोत्सव, धार्मिक यात्रा, संगीत और नृत्य, अनेक प्रकार के भोजन, निर्धनों को भोजन कराना और धार्मिक पारंपरिक प्रकार की अनेक गतिविधियों का आयोजन करते हैं। इन गतिविधियों का मूल उद्देश्य मन को शुद्धता प्रदान करना, दुर्भावनापूर्ण प्रवृत्तियों को रोकना, समाज को पुनः ऊर्जा प्रदान कर नवीनीकृत करना होता है इसलिये उत्सव शब्द का अर्थ शक्ति को पुनर्जीवित करना होता है। हिन्दू त्योहार प्रकृति के चक्रीय जीवन से संबधित हैं, इसलिये उनका उद्देश्य मानव जीवन को स्थिर होने से रोकना है। ये त्योहार प्रतिवर्ष चक्रीय रूप में कई दिनों तक चलते रहते हैं और समस्त भारत में मनाये जाते है।

प्रारम्भिक काल में मन्दिर एक साधारण संस्था थे और इसलिए उनके आय–व्यय के साधन सीमित होते थे परन्तु शनैः शनैः मन्दिर एक प्रमुख संस्थान बन गये। उत्कृष्ट धार्मिक संस्थान होने के अतिरिक्त समाज के एक केन्द्र के रूप में कार्य करने लगे, जिससे मन्दिरों के चारों ओर उस क्षेत्र के प्रमुख आर्थिक क्रियाकलाप सम्पन्न होते दिखाई पड़ते हैं। अंततः परिणामस्वरूप इन मन्दिरों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक बड़ी आय की आवश्यकता होने लगी। हालांकि ऐसा प्रतीत होता है कि शासक वर्ग, नगर प्रमुखों, राजघराने की स्त्रियों, सम्पन्न व्यक्तियों सभा, उर तथा नगरम् आदि जैसी निगमित संस्थाओं ने बड़ी मात्रा में मन्दिरों को अनुदान दिये और इन अनुदानों के कारण ही मन्दिर सम्पन्न स्थिति में आ गये। सम्पन्न लोगों के साथ–साथ सामान्य जनमानस भी मन्दिर की वित्तीय सहायता में अपना योगदान देने में

पीछे नही रहे।

सांस्कृतिक क्रियाकलाप उन अभिव्यक्तियों, परम्पराओं और प्रथाओं को प्रस्तुत करते हैं जो किसी समाज या उस समूह के मूल्यों, विश्वासों और इतिहास को प्रकट करते हैं। इन सांस्कृतिक क्रियाकलापों के अन्तर्गत उस राष्ट्र की राजनीति, अर्थव्यवस्था, भूगोल, समाज, साहित्य, दर्शन, विज्ञान, क्रीडा अर्थात मानव समाज को प्रभावित करने वाली अथवा मानव जीवन से जुड़े समस्त क्रियाकलाप शामिल हो जाते हैं। ये गतिविधियाँ न केवल मनोरजंन और शिक्षा प्रदान करते हैं वरन् उस संस्कृति के सदस्यों के बीच सामूहिकता और निरन्तरता की भावना को भी प्रकट करते हैं।

चोल कालीन समाज में हमें मुख्य रूप से हो रहे सांस्कृतिक क्रियाकलाप–कला के अन्तर्गत स्थापत्य, मूर्तिकला– पाषाण निर्मित स्थापत्य, ताम्र निर्मित स्थापत्य, चित्रकला, संगीत, नृत्य, अभिनय, विज्ञान, खगोल शास्त्र, गणित, चिकित्साशास्त्र, प्रायोगिक विज्ञान, इंजीनियरिंग, दर्शन– शिक्षा व साहित्य, धर्म–शैव, वैष्णव, बौद्ध व जैन आदि सहज ही होते दिखाई पड़ते है, जिन गतिविधियों को चोल शासकों ने बढ़ावा दिया, का उल्लेख प्राप्त होता है। हमारे प्राचीनम ग्रन्थ, *धर्मशास्त्र* (एपिग्राफिका इण्डिका, वॉल्यूम 8, पृष्ठ 157–158) और तमिल साहित्य के कुछ ग्रन्थ भी महत्वपूर्ण अवसरों पर प्रायः दान का उल्लेख करते हैं। भक्ति आन्दोलन, जिसने हिन्दू धर्म को प्रचारित और लोकप्रिय बनाने में अपनी महती भूमिका निभाई, ने लोगों को सामान्य धारणा के अलावा पृथ्वी व परलोक के देवताओं का आशीर्वाद व अनुग्रह प्राप्त करने के लिए मन्दिरों में अनुदान देने के लिए प्रेरित किया।

अध्ययन से ज्ञात होता है कई शिलालेख उपहार देने के विभिन्न अवसरों के विषय में वर्णन करते हैं। (पी. वी. काणे:848) कुछ उपहार ऐसे हैं जो अपनी भव्यता के कारण महादान के रूप में जाने गये, जो शासकों द्वारा दान किये गये थे। मत्स्य पुराण में 16 प्रकार के महादानों का तथा शिलालेखों में भी महादानों की एक सूची का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें एक स्वर्णअण्ड, ब्रह्मण्ड का एक स्वर्ण चक्र, पाँच तत्वों से निर्मित एक स्वर्ण पात्र, एक रत्नजड़ित गौ, सात महासागर, एक वृक्ष व लता आदि हैं। इसके अतिरिक्त स्वर्ग प्राप्ति हेतु स्वर्ण निर्मित एक दिव्य गाय, स्वर्ण निर्मित धरती की प्रतिकृति, स्वर्ण निर्मित घोड़े का रथ, व्यक्ति के भार के बराबर स्वर्ण (तुलाभार), एक हजार गायें, एक स्वर्ण का घोटक, एक स्वर्ण पात्र जिसे हेमगर्भ (स्वर्ण गर्भित ब्रह्मा), एक स्वर्णनिर्मित गज और पाँच हल के दान का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।(एपीग्राफिका इण्डिका, वॉल्यूम 1:364–369)

शास्त्रकारों के अनुसार कई खगोलीय दिन अनुदान देने के लिए उपयुक्त अवसर होते थे। अयन दिवस, विषुव दिवस, संक्रान्ति पर्व, सुर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन, व्यतिपात और अन्य कई तिथियों पर दिये गये उपहार व अनुदान देने के लिए पसंदीदा अवसर के रूप में समकालीन अभिलेखों

में अच्छी तरह उल्लिखित है।(डी. दयालनः76–77)

प्रायः राजा अपने राज्यभिषेक व अभियानों के नेतृत्व के अवसर पर, युद्ध में विजय के पश्चात्, पुत्रों के जन्म के अवसर पर उसकी समृद्धि के लिए, किसी स्थल के जीर्णोद्धार अथवा स्थापना के समय अनुदान देता था। जब वह किसी महत्वपूर्ण युद्ध में शिविर लगा रहा होता था तो वह लम्बी आयु, स्वास्थ्य और विजय के लिए मन्दिर में दर्शन करते समय अनुदान करता था। (डी. दयालनः77) हेमगर्भ और तुलाभार चोल काल के दौरान शाही सदस्यों द्वारा किये जाने वाले उसके पसंदीदा अनुष्ठान थे। उत्तिरूमेरूर शिलालेख सुन्दर वरदापेरूमल मन्दिर को *तुलाभारातल्ली* (वह मन्दिर जहाँ पर तुलाभार का दान किया जाता था) कहा जाने लगा क्योंकि चोल शासकों के समय यहाँ हमेशा *तुलाभार* दान दिया जाता था।(एस. आर. बालासुब्रमण्यम्,1965:25)

शाही स्त्रियों, प्रमुखों और अधिकारियों और अन्य अमीर और गरीब व्यक्तियों द्वारा दिये जाने वाले अनुदान अवसर व मुख्य रूप से उनके परिस्थितियों और मन पर निर्भर करते थे। अनुदान ग्रहण के समय युद्ध क्षेत्र में अपने जीवनदान देने वाले सेवक (योद्धाओं) की योग्यता व स्मृति के लिए माता–पिता, पुत्री और अन्य रिश्तेदारों की योग्यता के लिए दिए गये अनुदानों का कई बार उल्लेख प्राप्त होते है। *कुलम* (परिवार) और शासक के कल्याण व समृद्धि के लिए कई अवसरों पर चोल शासकों के द्वारा उपहार देने के उल्लेख शिलालेखों में प्राप्त होते है। 1108 ई. के एक शिलालेख में कहा गया है कि एक स्त्री ने सती होने के समय मन्दिर को अनुदान दिया था क्योंकि उसे उस महत्वपूर्ण अवसर पर उसके द्वारा किये पापों का प्रायश्चित करना था। अपने माता–पिता व रिश्तेदारों को अमरता प्रदान करने, स्वयं के लिए युद्ध में सफलता या अपमान के भय से उबरने एवं अन्य उद्देश्यों के लिये भी अनुदान किये जाते थे। इन उद्देश्यों ने लोगों को दान करने के लिए प्रेरित किया। एक व्यक्ति द्वारा भीख मांगकर एक दीपक, पकड़ी गई भेड़ों और दुश्मन के इलाकों से जब्त किये गये अन्य खजाने को इकट्ठा करके दान किया जाता था। ऐसे कुछ मन्त्र हैं, जिनका उल्लेख शिलालेखों में है। मन्दिर की आय के साधनों में ग्राम अनुदान, भूमि अनुदान, धन अनुदान, जानवरों का अनुदान, बर्तन, आभूषण और पूजा के लिए आवश्यक अन्य विविध वस्तुएं तथा विभिन्न बकाया और करों के अनुदान शामिल है।(डी. दयालन,1992:77–78)

चोल मन्दिरों में प्रारम्भ से त्योहारों का बड़े पैमाने पर आयोजन किया जाता रहा है, चोलकालीन मन्दिर न केवल धार्मिक महत्व रखते हैं वरन् सांस्कृतिक परम्पराओं को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संरक्षित करने और प्राचीन परम्पराओं की निरन्तरता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये त्योहार हमारे समाज को एक साथ बांधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, साथ ही धर्म के प्रसार में भी सहायक सिद्ध होते हैं, यही कारण है कि हिन्दू धर्म में त्योहारों और मेलों के आयोजन की परम्परा प्राचीन काल से बनी हुई है। चोल कालीन

मन्दिरों में आयोजित किये जाने वाले कुछ त्योहारों का वर्णन निम्नवत् है–

- **संक्रांति**
- **मसी मगम (मघा)**
- **पंगुनी उत्तीरम**
- **चैत्र पौर्णिमी**
- **आदि पुरम**
- **उपक्रम्**
- **भोगी पोंडीगई**
- **महाशिवरात्रि**
- **रथ सप्तमी**
- **थाई पुसम**
- **अइप्पासी (अन्नाभिषेकम्)**
- **ब्रह्मोत्सवम**
- **अवनी मूलम**

संक्रांति–

संक्रांति नाम उस दिन को दिया जाता है, जिस दिन सूर्य धनु राशि से अपनी यात्रा समाप्त करके मकर राशि में प्रवेश करता है। इस दिन को समस्त भारत में *उत्तरायण, संक्रांति, तिल संक्रांति, मघा, मोकोर संक्रांति मेला, घुंघुती, भोगी, संक्रात, पोंगल* आदि नामों से विभिन्न क्षेत्रों में मनाया जाता है। हिन्दु पचांग के आधार पर यह हिन्दुओं के लिए विशेष पर्व माना जाता है। यह अंग्रेजी कैलेण्डर के हिसाब से जनवरी–फरवरी तथा तमिल माह के अनुसार *'तई'* माह में मनाया जाता है। इस अवसर को *'मकर संक्रांति'* कहा जाता है। हालांकि तमिल भाषी लोगों ने इस त्योहार को *'पोंगल पंडीगई'* नाम दिया है क्योंकि नये कटे हुये चावल को प्रथम बार पकाया जाता है, इस तैयारी को *'पोंगल'* कहते हैं।

हिन्दू ग्रन्थों में यह वर्णित है कि भोजन को खाने की वस्तु के साथ नही बल्कि केवल यज्ञ और ईश्वर को अर्पित करने के उद्देश्य से पकाया जाना चाहिए। पूजा के बाद बचा हुआ भोजन खाया जा सकता है। इसलिये नये कटे हुये चावल को सूर्य को अर्पित करने हेतु पकाया जाता है, जिसे ऊर्जा व उत्साह का प्रतीक माना जाता है और इसी ऊर्जा से सारा संसार चलता है चाहे वो मानव हो, पशु हो या वनस्पति सभी का जीवन आधार सूर्य है।

इस अवसर पर मुख्यतः सूर्य पूजा की जाती है, परन्तु अन्य देवताओं और फसलों की उपज के पक्ष में अन्य तत्वों की उपेक्षा नही की जाती है। इस अवसर पर वायु देवता की भी पूजा की जाती है क्योंकि वे मानसून के देवता है, जिसके बिना वर्षा संभव नही है। कुटुंब की कुशलता और सुखी जीवन सुनिश्चित करने के लिये 'गृह देवता' कहे जाने वाले परिवार के संरक्षक देवता की भी पूजा की जाती है और यह

पूजा 'वास्तु पूजा' के नाम से जानी जाती है।

मासी मघा–(मगम्)

मसी मघा, त्योहार हिन्दुओं (तमिल) द्वारा माघ माह में मनाया जाता है, जो तमिल मासी के नाम से भी जाना जाता है। यह त्योहार अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार फरवरी–मार्च माह में मनाया जाता है जिस दिन मघा (लियोनिस) नक्षत्र समाप्त हो जाता है। इस त्योहार को मनाने का दिन माघ माह की पूर्णिमा तिथि होती है। माघ नक्षत्र की अध्यक्षता करने वाले देवता बृहस्पति को माना जाता है, जो देवताओं के गुरू माने जाते है। इसलिए माना जाता है कि इस उत्सव के अवसर पर बृहस्पति की पूजा करने से लोगों की समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति होती है, यदि यह पूजा सही भावना व सही तरीके से की जाये है।(डी. दयालन,1992:77–78)प्रायः देश के सभी मन्दिरों में, पीठासीन देवता के सम्मान में उत्सव मनाए जाते हैं। लोग बड़ी संख्या में उन मन्दिरों में आते हैं, न केवल त्योहार के साक्षी बनने के लिये बल्कि उसमें सक्रिय रूप से भाग लेने के लिये भी।

पंगुनी उत्तीरम्–

पंगुनी उत्तीरम् नाम से जाना जाने वाला यह त्योहार 'फाल्गुन' मास की पूर्णिमा तिथि को पडता है। इस त्योहार को तमिल क्षेत्र में मनाये जाने के कारण *तमिल पंगुनी* भी कहा जाता है यह त्योहार अग्रेंजी कैलेंडर के आधार पर मार्च–अप्रैल के महीने में मनाया जाता है। जब चन्द्रमा उत्तरा नक्षत्र में होता है इसलिये यह दिन भगावान शिव की पूजा के लिये महत्वपूर्ण माना जाता है। यह दिन विशेष रूप से भगवान शिव को समर्पित है। इस त्योहार को 'कल्याण व्रत' के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि कहा जाता है कि देवी मीनाक्षी ने इसी के दिन मदुरा में भगवान सुंदरेस से विवाह किया था। हिन्दुओं की ऐसी मान्यता है कि जो लोग इस व्रत का पालन श्रद्धापूर्वक करते है, उन्हें समस्त प्रकार के फलों की प्राप्ति होती हैं।

चैत्र पौर्णिमी

चैत्र पौर्णिमी के नाम से जाना जाने वाला यह हिन्दू त्योहार तमिल माह के *चिथिरई* के महीने में पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। अंग्रेजी महीने में अप्रैल–मई में पड़ता है, जब 'चित्रा' नक्षत्र समाप्त हो जाता है। यह त्योहार यम के मुख्य लेखाकार चित्रगुप्त(इंसक्रिपशन, ऑफ द मद्रास प्रेसिडेन्सी:432) को प्रसन्न करने के लिये मनाया जाता है, जिनके विषय में कहा जाता है कि यह मानव की मृत्यु के बाद उन्हें दण्डित करने या पुरस्कृत करने के लिये किए गए अच्छे व बुरे कर्मों के आधार पर उनका लेखा–जोखा दर्ज करता है। चित्रगुप्त के कार्यों की अवधारणा अत्यन्त आलंकारिक है। जिसके विस्तृत व्याख्या की

आवश्यकता है।

आदिपुरम

यह त्योहार दक्षिण भारत के मन्दिरों में आदि या आषाढ़ महीने में मनाया जाता है। अंग्रेजी कैलेण्डर माह के जुलाई–अगस्त में पड़ता है। जब नक्षत्र 'पुरम' लग्न में होता है। त्योहार का उद्देश्य देवी शक्ति की महिमा का प्रसार करना, जिनके विषय में ऐसा माना जाता है कि वे इस अवसर पर लोगों को आशीष देने के लिये प्रकट हुई थी। इसलिए लोग न केवल स्वयं के लिये वरन् अपने से सम्बन्धित लोगों के लिये भी आशीर्वाद मांगते है और समृद्धि की कामना करते है। यदि यह त्योहार शुक्रवार को पड़ता है तो इसकी महत्ता और बढ़ जाती है तथा लोग सामान्य दिनों की अपेक्षा अधिक उत्साह से मनाते है।ऐसा माना जाता है कि संसार में प्राप्त आठ निधियाँ व शक्तियाँ है, वे सभी देवी शक्ति के अधीन है जो हिन्दुओं की देवी है।

उपक्रम–

चिड़िया जिसे द्विज की संज्ञा दी जाती है, जो दो बार जन्म लेती है। इसी प्रकार एक बार अण्डे के रूप में और दूसरी बार जब वह अण्डे से बाहर आती है। समान रूप से ब्राह्मण को भी द्विज कहा जाता है, जो एक बार वह अपनी माता के गर्भ से बाहर आने पर जन्म लेता है, उसका दूसरा जन्म तब होता है जब वह उपनयन संस्कार के पश्चात् आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करता है, जो उसके माता–पिता, परिवार तथा गुरू द्वारा करवाया जाता है। हिन्दू धर्म में नवयुवकों के *उपनयन संस्कार* का बहुत ही महत्व है। सामान्यतः भौतिक आंखों से, मनुष्य भौतिक दुनिया से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु को देखने में सक्षम होता है। लेकिन प्राचीन काल से ही हिन्दू धर्म व संस्कृति से जुड़े लोग चौदह लोकों(अय्यर पी० वी० जगदीशा,1921:104) में विश्वास करते हैं, जिन्हें 'तइस' कहा जाता है।

भोगी पोंडीगई–

यह त्योहार दक्षिण भारत में मनाये जाने वाले प्रमुख त्योहारों में से एक है, यह त्योहार सूर्य के दक्षिणायन जाने पर, दक्षिणायन के अन्तिम दिन मनाया जाता है। यह मकर संक्रांति के एक दिन पहले जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है। यह त्योहार तमिल महीने के आधार पर थाई माह में, स्वर्ग के अधिपति व उनके हाथी के सम्मान में मनाया जाता है जो बादलों के नियन्ता हैं तथा बादलों को नियन्त्रित कर पृथ्वी पर वर्षा करवाते हैं जिससे देश खुशहाली व समृद्धि आती है। 'भोगी' शब्द का अर्थ है "भौतिक आनंद का त्योहार" इस त्योहार के नाम के आधार पर प्रतीत होता है चूंकि सामान्य मानव के जीवन की पूंजी उसके द्वारा की गई मेहनत का परिणाम उसकी उपज होती है, जो उसकी समृद्धि का कारक होती है। सम्भवतः इसलिये इस त्योहार का नामकरण 'भोगी पोंडीगई' किया गया। यह त्योहार एक तरह से हिन्दु धर्म में

विवाह व शुभ कार्यों के आरम्भ का भी अवसर होता है।

महाशिवरात्रि–

यह त्योहार हिन्दुओं द्वारा भगवान शिव के सम्मान में मनाया जाता है जो त्रिदेव में से एक है। यह त्योहार माघ माह के कृष्णपक्ष की चौदहवीं तिथि को मनाया जाता है, जो अग्रेंजी कैलेण्डर के अनुसार फरवरी–मार्च व तमिल माह *मासी* में पड़ता जाता है। आमतौर पर रात्रि का समय शक्ति उपासना का माना गया है और दिन का समय पुरूष देवताओं की उपासना का माना जाता है, परन्तु इस विशेष दिन शिव की पूजा रात्रि के समय प्रचलित है। ऐसी मान्यता है कि इस व्रत को रखने से मानव द्वारा अनजाने में किये गये पापों से मुक्ति मिल जाती है। इस व्रत के दौरान रात्रि के पहर को चार भागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक पहर को एक 'जम' की संज्ञा दी जाती है, जिसे सामान्यतः यम कहा जाता है, व्रत रखने वाले लोग इस अवसर पर रात्रि जागरण करते हैं। ऐसा कहा जाता है एक समय सारी दुनिया अंधकारमय हो गई थी, तब देवी पार्वती ने भगवान शिव से प्रार्थना की कि 'जिरास' (जीवित आत्माएं) प्रलय की उस अवधि के दौरान मोम की गांठ में सोने की धूल के कणों के समान अन्तरिक्ष में रहें। देवी पार्वती द्वारा की गई प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। देवी पार्वती द्वारा जिस रात प्रार्थना की गई उस रात को महाशिवरात्रि या प्रलय की रात कही जाती है, क्योंकि प्रलय उनके द्वारा लाया गया था इसलिए यह अवधि शिवरात्रि नाम से प्रचलित हुई। इसी दिन देवी पार्वती व भगवान शिव का विवाह हुआ था, इसलिये ये त्योहार सभी शिवालयों में बहुत ही उत्साह से मनाया जाता है, जो भी भक्त शिवरात्रि व्रत का पालन करते है, वे व्रत के दिन से पहले दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं और रात्रि में साफ–सुथरे स्थल पर सोते हैं। व्रत के दिन वे सुबह कावेरी समान नदी पर निवास करते है और शिव मन्दिर स्थल जाकर दर्शन करते है और रात्रि प्रहर में पूजा करते हैं। बृहदीश्वर मन्दिर के पुजारी के अनुसार– चार यमों में शास्त्रों में यह वर्णन मिलता है कि व्रत करने वालों को कमल के फूलों से शिव की पूजा करनी चाहिए, उन्हें 'पोंगल' नामक एक भोग अर्पित करना चाहिए, जो चावल और हरी दाल को मिलाकर एक साथ पकाया जाता है और पहले यमम् के समाप्त होने तक ऋग्वेद का पाठ करते रहना चाहिए।

दूसरे यम में, उन्हें तुलसी के पत्तों को चढाना चाहिए, पायसम नाम से जानी जाने वाला मीठा भोग लगाना चाहिए, और तीसरे यमम् (प्रहर) के आरम्भ होने तक यजुर्वेद का पाठ करना चाहिए। तीसरे प्रहर में बेल के पत्तों से पूजा करने का विधान है, जिसे तमिल भाषा में *बिल्वम* की संज्ञा दी गई है। रात के अन्तिम अर्थात् चौथे प्रहर में नीले कमल से श्रृंगार करना चाहिए, जिसे नीलोत्पलम या सेंगालिनिर कहा जाता है, प्रसाद में सादा भोजन व प्रहर समाप्त होने तक अथर्ववेद का पाठ करना चाहिए।

रथ सप्तमी

रथ सप्तमी नाम से जाना वाला हिन्दू त्योहार माघ महीने में शुक्ल पक्ष पखवाड़े के सातवें दिन मनाया

जाता है, जिसे तमिलताई मुसम भी कहा जाता है, यह अंग्रेजी माह के जनवरी–फरवरी माह में आता है, जब सूर्य मकर राशि में होता है। इस त्योहार को अनेक नामों से भी जाना जाता है, कुछ लोग इसे माघ सप्तमी कहते है यह उस माह के नाम पर बोला जाता है और शुभता से जोड़ा जाता है। सप्तमी शब्द संस्कृत शब्द सप्त से लिया गया है, जिसका अर्थ सात है, परिणामस्वरूप माघ सप्तमी का अर्थ सातवीं तिथि'' या उसके अगले दिन के रूप में लिया जाता है। इस त्योहार को जयंती–सप्तमी व महा सप्तमी भी कहते हैं। जयंती सप्तमी का अर्थ विजय से भी जोड़ा गया है, पूर्णिमा के बाद के सातवें दिन को जया सप्तमी कहते है जिसे विश्वास उत्पन्न होने से अर्थात इस त्योहार के पालन से सभी उपक्रमों में सफलता मिलती है और माना जाता है कि महा सप्तमी वर्ष में पड़ने वाली सप्तमियों में विशेष रूप से शुभ मानी जाती है।

थाई पुसम

यह हिन्दू त्योहार, जिसे *थाई पुसम* के नाम से जाना जाता है, यह उस दिन मनाया जाता है जिस दिन पुष्य नक्षत्र आरम्भ होता है। यह तमिल माह के *तई* माह व अंग्रेजी माह के जनवरी–फरवरी माह में मनाया जाता है। यह त्योहार पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है और इसका अधिष्ठाता देवता बृहस्पति को माना जाता है तथा पुष्य नक्षत्र को महत्ता प्रदान की जाती है। बृहस्पति को ज्ञान का प्रतीक व नक्षत्रों का गुरू माना जाता है, इस दिन किसी पवित्र नदी में स्नान करना बहुत ही फलदायी माना जाता है। तंजावुर जिले के *तिरूविदाईमरूदुर* नामक स्थान पर यह त्योहार मनाया जाता है।

अन्नाभिषेकम् (अइप्पासी)

यह त्योहार एक प्रकार से देवता को स्नान कराने की प्रक्रिया है, जिसमें 'अन्नम्' का अर्थ है चावल और अन्नभिषेकम् का अर्थ है पके हुये चावलों से देवता का स्नान कराना। यह दिव्य अनुष्ठान तमिल माह के अइप्पासी (मध्य अक्टुबर– मध्य नवम्बर) की पूर्णिमा के दिन किया जाता है। हालांकि भारत में विभिन्न प्रकार के अभिषेकम किये जाते है, यह विशेष समारोह लगभग समस्त दक्षिण भारतीय शिव मन्दिरों में मनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि वर्ष में एक बार इस अनुष्ठान को करने से आपके जीवन में आने वाली समस्त समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है। इस समारोह को शिव अभिषेकम् या महा अन्न अभिषेकम् के नाम से भी जाना जाता है और यह पूरे दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु में शिव मन्दिरों में आयोजित किया जाता है।

मन्दिर अर्थव्यवस्था का आधार

ग्राम अनुदान

मन्दिर को ग्रामदान एक महत्वपूर्ण कार्य था जो मन्दिर को स्थायी वित्तीय आधार के साथ–साथ समाज में

एक प्रमुख स्थिति भी प्रदान करता था क्योंकि ग्रामदान प्रायः शासक ही कर सकता था। हालाँकि, कभी–कभी, युवराज या उत्तराधिकारी को भी ग्राम को अनुदान देने का अधिकार दिया जाता था।(अल्टेकर ए. एस.,1934:152) सरदारों, (साऊथ इण्डियन इन्सक्रिपशन,12:86) राजकीय महिलाओं अन्य लोगों के द्वारा भी राजा से अनुमति प्राप्त करने के बाद ग्राम या उसके राजस्व का अनुदान दिया जाता था। प्रायः ग्रामदान कई प्रकार के होते हैं। देवदान ग्रामों को प्रायः प्रत्यय नल्लूर(केनेथ आर. हाल,1980:22) द्वारा पहचाना जाता था। यदि किसी ग्राम पर पहले से ही कब्ज़ा था, तो किसानों को उस स्थान से हटा दिया जाता था या नए पट्टेदार के नियन्त्रण में दे दिया जाता था। कभी–कभी केवल गांव के एक हिस्से का ही अनुदान दिया जाता था जबकि गांव के अन्य हिस्सों को बिना किसी बाँधा के छोड़ दिया जाता था। कभी–कभी पूरे ग्राम को, जिसे *उर, नगरम्* या *ब्रह्मदेय* के रूप में नामित किया जाता था, मन्दिर को देवदान के रूप में दिया जाता था। यह मानना उचित है कि इन मामलों में केवल निर्धारित वार्षिक मूल्यांकन को स्थानांतरित किया जा रहा था और मौजूदा खेती की व्यवस्था में बदलाव नही किया गया था।

भूमि अनुदान

भूमिदान को धर्मशास्त्रों और टीकाओं ने भी सबसे बेहतर दान माना है। इन्होंने भूमिदान को सबसे बड़ा दान माना है। यह ऐसा दान है जो सभी दोषों से मुक्त करने में सक्षम था। पल्लव अभिलेखों में भी इस दान की सराहना की गई है। (एपिग्राफी इण्डिका,32:91–92) चूंकि भूमि एक बहुत बड़ी संभावित आर्थिक इकाई है जो मानव जीवन के संचालन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है संभवतः इसलिये इसे महादान की संज्ञा प्रदान की गई है। हिन्दू मन्दिरों को दान की गई भूमि को आमतौर पर देवदान या देवभोग के रूप में जाना जाता था, और जैन तथा बौद्ध मन्दिरों को दान की गई भूमि को *पल्लीचंडम* कहा गया है।(केनेथ हॉल,1980:23)

ग्रामदान के समान, मन्दिरों को भी दान की गई भूमि का अर्थ प्रायः राजस्व व आय का हस्तान्तरण होता था न की मात्र संपत्ति का। पल्लव,पाण्ड्य व चोल काल के कई अभिलेखों में भूमिदान का उल्लेख प्राप्त होता है।(साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन,6:446)मन्दिर को व्यक्तिगत दान के अतिरिक्त, ग्राम सभाओं, मन्दिर के कर्मचारियों, पुजारियों आदि द्वारा भी मन्दिर को दान स्वीकार दिये जाने के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

दान दी जाने वाली भूमि का अभिलेखों में स्पष्ट रूप से सीमांकन तथा विवरण प्राप्त होता है। उस भूमि को स्पष्ट रूप से पत्थरों द्वारा घेर दिया जाता था और इसके चारों कोणों पर पत्थर लगा दिये जाते थे *(कल्लुम कलियुम नत्ती)* चोल शिलालेखों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है(ट्रान्जैक्सन्स ऑफ द आर्किओलॉजिकल सोशायटी ऑफ साऊथ इण्डिया,1958–59:88–89)कि जिस मन्दिर की भूमि

है, उसके अनुसार सीमांकन करने वाले पत्थरों पर भगवान शिव और भगवान विष्णु के हथियारों के प्रतीक उत्कीर्ण किये जाते थे। शाही भूमिदान के पश्चात् घोषणा करने वाला आदेश प्रायः लागू करने के लिए स्थानीय अधिकारियों को संबोधित किया जाता था।(एपिग्राफी इण्डिका, वॉल्यूम 32:91–99)गैर–ब्राह्मण व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया जाने वाला दान शासक से सहमति प्राप्त करने के बाद किया जाता था।(डी. दयालन,1992:81)

करों और देयताओं और आय का अनुदान

विभिन्न करों और बकाया राशि का अनुदान भी मन्दिर की आय का बड़ा भाग होता था। कर अनुदान सामान्यतः तीन श्रेणियों के लोगों द्वारा दिया जाता था, प्रथम राजा जो राज्य का सर्वोच्च था और सभी प्रकार के करों का प्राप्तकर्ता था। द्वितीय *सभा, उर, नगरम्* जैसी ग्राम सभायें आदि जो सीधे कर संग्रह से संबंधित थे। तृतीय वे थे जो विभिन्न प्रकार की कर योग्य वस्तुओं का उत्पादन या व्यापार करते थे यथा–बढ़ई, लुहार, तेल व्यापारी, बुनकर आदि।(के. इस्माइल,1984:56–57)

धन अनुदान

मन्दिर और धर्मार्थ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अनुदान देने के लिये दानदाताओं द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति की परवाह किये बिना धन का दान एक सामान्य माध्यम था। जिसका उल्लेख अनेक शिलालेखों में भी प्राप्त होता है, *कासु, पालकुसु, दीनारस* और कृष्ण *काचा* पल्लव और प्रारंभिक पाण्ड्य काल के दौरान प्रचलित कुछ मुद्राएं हैं। (डी. दयालन,1992:87)*तुलैप्पोन* और *विडेलविडुगुप्पोन* स्वर्ण सिक्के हैं जो बाद के काल में पल्लव कालीन अभिलेखों में प्रायः प्राप्त हो जाते हैं। *कलंजू* शब्द या तो एक प्रकार के स्वर्ण सिक्के को इंगित करता है(सी. मीनाक्षी,1938:115) अथवा समकक्ष भार की मुद्रा को दर्शाता है।(टी. एन. सुब्रमण्यम्,3:1414) मन्दिर को दिये जाने वाले अनुदानों में धन अनुदान ने एक उल्लेखनीय स्थान प्राप्त कर लिया। मन्दिर को प्राप्त होने वाला (35 प्रतिशत) अनुदान विशेष रूप से धन का दान है। धन का दान विभिन्न विशेष उद्देश्यों और अवसरों पर किया जाता था। प्रायः धन का दान मन्दिर में जलाये जाने वाले दीनकों के रख–रखाव के लिये किया जाता था। यह सोने के दान का लगभग 73 प्रतिशत भाग होता था। मन्दिर के समस्त दानों में दीपदान सबसे पसंदीदा दानों में से एक माना जाता था, जिसका उल्लेख साहित्यों और पुरालेखों दोनों में प्राप्त होता है। अधिकांश दानकर्ताओं द्वारा स्वर्णदान इसलिये भी किया जाता था ताकि उसके ब्याज से मन्दिर में निरन्तर दीपक (*नुंधा विलक्कु*) जलाने के लिये तेल अथवा घी की आपूर्ति की जा सके। दीनक के अतिरिक्त भी अन्य सेवाओं की आपूर्ति के लिए भी लोग स्वर्णदान करते थे जैसे मन्दिर की विभिन्न चढ़ावे की वस्तुओं की आपूर्ति के लिए, मन्दिर के ब्रह्मणों व आने वाले श्रद्धालुओं को भोजन कराने के लिये, भगवान के पवित्र स्नान (*तिरुमंजनम*), अनेक त्योहार मनाने के लिये, फूलों की आपूर्ति के लिये, फूल के बगीचों की देखभाल के लिये, मन्दिर के कर्मचारियों के पारिश्रमिक

आदि की आपूर्ति बनाये रखने के लिए लोगों द्वारा धन का दान किया जाता था।(डी. दयालन,1992:87) अधिकांश दानों में दान किये सोने को कम नही रखा गया था और उसपर केवल ब्याज का उपयोग उस उद्देश्य के लिये किया जाता था जिसके लिये स्वर्ण का दान किया गया होता था।

पशु अनुदान

मन्दिरों को प्रायः दान में मवेशी भी प्राप्त होते थे, इन मवेशियों के दान का उद्देश्य मन्दिर में सतत् जलने वाले दीपों की स्थापना, देवता के पवित्र स्नान, देवता को चढ़ाये जाने वाले भोग के लिये घी की आपूर्ति और अन्य प्रयोजनों के लिए दान किया जाता था। दीप प्रज्ज्वलन और उनके रखरखाव के लिये अन्य दानों की तुलना में पशुदान अत्यंत लोकप्रिय था, ऐसा संभवतः इसलिये था क्योंकि यह समाज के हर वर्ग की पहुंच में था। मन्दिरों को दिए जाने वाले दान का 90 प्रतिशत भाग पशु अनुदान है, शिलालेखों में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। चोल शिलालेख बलि के उद्देश्य से मन्दिर में जानवरों के दान के बारे में बताते हैं। राजेंद्र प्रथम के शासनकाल से संबंधित एक शिलालेख कोलार (कर्नाटक) में देवी को हर मंगलवार को एक बकरे की बलि देने का उल्लेख है। प्रायः पशुदान एक दीपक, दो दीपक के लिये किया जाता था लेकिन कुछ मामलों में दान आधा दीपक और एक चौथाई दीपक के लिये भी दान किया जाता था।

मन्दिर निर्माण

मन्दिर निर्माण के कार्य को सभी दानों में पवित्र माना गया है क्योंकि मन्दिर निर्माण ने न केवल श्रद्धालुओं को अपने ईष्ट से निकटता स्थापित करने की सुविधा प्रदान की वरन् सामान्यतया मन्दिर भक्ति व धार्मिक उत्साह के प्रतीक के रूप में शासकों द्वारा स्थापित किये गये। संगम कालीन साहित्य में समकालीन मंदिरों के बारे में अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है। परम्परागत रूप से, मन्दिरों के विस्तार का प्रथम व्यवस्थित प्रयत्न पल्लवों के पूर्व संगम कालीन शासक कोचचेनकन द्वारा किया गया था, जिन्हें साहित्य में मन्दिरों के गौरवान्वित निर्माता के रूप में वर्णित किया गया है।(एम. ए. दुरई रंगास्वामी,1959:10)पल्लव और पाण्ड्य काल के दौरान बड़ी संख्या में पुरालेखीय साक्ष्य मौजूद हैं, जो मन्दिरों के निर्माण व नवीनीकरण और किए गए परिवर्धन के बारे में उल्लेख करते हैं। मन्दिरों के निर्माण, जीर्णोद्धार और सुधार करने वालों की सूची में शीर्ष दानकर्ता शासक वर्ग ,सरदार, प्रमुख व्यक्ति राजकीय महिलायें और अन्य शाही सदस्य थे। इसके पश्चात् ब्राह्मण, जिनमें ब्राह्मण स्त्रियां, अधिकारी वर्ग, व्यापारी, पुजारी वर्ग, प्रशासनिक वर्ग आदि शामिल थे।(डी दयालन,1992:93)

चोल काल के दौरान राजाओं और शाही सदस्यों ने मन्दिरों के निर्माण और दान में प्रमुख भूमिका निभाई। शासक अपनी अधिकांश प्रजा के धर्म को विशिष्ट संरक्षण देकर अपनी सामाजिक छवि को और अच्छी बनाता था। मन्दिर निर्माण परंपरा के प्रारंभिक काल अवस्था गुफा जिसमें देवता के लिये केवल एक कक्ष होता था,से आरम्भ होकर विकसित अवस्था में पहुचने तक एक लम्बा काल खण्ड रहा है। मन्दिर के

संरचनात्मक चरण से मन्दिर के विकसित स्वरूप तक पहुंचने के काल में, मन्दिर एक परिसर में विकसित हुआ और समय–समय पर उसमें आवश्यकता के अनुसार अंग जुड़ते गये और बाद में चलकर वे मन्दिर के विशिष्ट अंग बन गये, जिनमें *मुखमंडप, अंबलम* (हॉल), स्नापनामंडप (स्नान कक्ष),महाभारत का प्रचार करने के लिये मंडप, पवित्र प्राकार, *गोपुरम्,* भोजन कक्ष, *रसभक्काट्टिल* (नंदी मंडप) विभिन्न अंगों को दानकर्ताओं द्वारा समय–समय पर बनवाया गया। चोल शिलालेखों मे उल्लेख प्राप्त होता है कि दानकर्ताओं को मन्दिरों के जीर्णोद्धार के कार्य के लिए पुरस्कृत भी किया गया था। उत्तिरामेरूर की सभा ने एक वेश्या को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किये थे क्योंकि उसने एक स्थानीय विष्णु मन्दिर की व्यापक मरम्मत और परिवर्धन करवाया था।(डी दयालन,1992:94)

विविध अनुदान

इस श्रेणी के अंतर्गत धान या चावल, बर्तन, आभूषण, चित्र, लैंप स्टैंड, संगीत वाद्ययंत्र, घर स्थल और विभिन्न अन्य विविध वस्तुओं का अनुदान आता है। प्रारम्भ से ही धान व चावल का दान लोगों के बीच लोकप्रिय था। चावल अथवा धान का उपयोग प्रसाद व पवित्र भोजन बनाने के लिये, ब्राह्मणों और श्रद्धालुओं को भोजन कराने के लिए, निरन्तर दीपक जलाये रखने के लिए, देवताओं के पवित्र स्नान के लिये और अन्य धर्मार्थ उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मन्दिर में दान किया जाता है। मन्दिर में अनुदान की श्रेणी में आभूषण और स्वर्ण को भी स्थान प्राप्त हुआ। शिलालेखों में उल्लेख प्राप्त होता है कि मन्दिरों को प्राप्त होने वाले अधिकांश आभूषणों का दान शाही स्त्रियों के द्वारा किया गया। *तिरूवेदिक्कुडी* (तंजौर) शिलालेख में मन्दिर को स्वर्ण पट्टिकायें और बर्तन दान में प्राप्त हुये। उसी स्थान के एक अन्य शिलालेख में उल्लेख प्राप्त होता कि मन्दिर के बर्तन व आभूषणों का निरिक्षण करने से पता चलता है कि एक चोल रानी ने अन्य उपहारों के साथ स्वर्ण जड़ित एक चीनी दर्पण दान दिया था। एक अन्य शिलालेख तिरूप्पलनम के देवता को 54 हीरे, 2 मणिक और 2 नीलमणि के साथ रूद्राक्ष मोतियों का एक हार जिसके केन्द्र में एक सुन्दर प्रस्तर व रत्नजड़ित है।(डी दयालन,1992:95)स्वर्ण माथापट्टी, स्वर्ण पुष्प आदि मन्दिर को दान किये गये आभूषणों का उल्लेख प्राप्त होता है।(साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन,14,1962:11) आभूषणों के अतिरिक्त मन्दिरों को तलवार, (डी.दयालन,1992:96) चंवर, (साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन,19:75)घंटी(डी. दयालन,1992:96) और कक्ष(साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन,19:99) जैसी अनेक वस्तुएं दान व उपहार में प्राप्त हुई। दान की सूची में विभिन्न प्रकार के मुकुट, माथे का आभूषण, कान की बालियां और कर्णफूल, हार, गले की ग्रव्यक, ब्रेस्ट बैण्ड, ब्रेस्ट प्लेट, कमरबन्द, कलाई चेन, केयूर, सोल्डर बैंड, कंधे की डोरियां, किंकिनी (पिंडली की मांसपेशियों के चारों ओर पहने जाने वाली घंटियों की डोरी), पायल, पैरों के बैंड (तिरूवदिक–कराई), बिछिया, अंगुठी और विभिन्न प्रकार के स्वर्ण फूल आदि। ये आभूषण राजराज प्रथम के काल में तंजावुर के राजराजेश्वरम् मन्दिर को दान में दिये गये थे।(बी. वेंकटरमण,1958:176–180,290–304) संगीत वाद्ययन्त्रों में *तिमिलई* (ड्रम)(डी. दयालन,1992:

96),*सेंगदिकाई* (घंटा)(साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन,14,1962:62),*कलम* (तुरही)(साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन,19:99), शंख, (डी. दयालन,1992:96) चोल शासक आदित्य प्रथम के काल में *कदरम* (ड्रम), तदम और अन्य वाद्ययन्त्र विभिन्न श्रेणियों के लोगों द्वारा मन्दिरों को दान किये गये।(साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन,13,1952:255)

अनुदान की सुरक्षा

यह मनुष्य का स्वभाव है कि कोई कितना भी निष्कपट हो, यदि वह निरन्तर अधिक धन अथवा स्वर्ण के सम्पर्क में रहता है तो कभी–कभी प्रलोभन में आ जाता है। शिलालेखों और साहित्यिक स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि मन्दिर जैसी प्रतिष्ठित संस्थाएं भी ऐसे प्रलोभनों से बच नही पायीं। संभवतः यही कारण है कि पुरालेख और धर्मशास्त्र बार–बार दान के कार्य को पुण्य का कार्य मानकर उसका संरक्षण करने की महिमा वर्णन करते हैं। कई बार दानकर्ता ने अपने उत्तराधिकारियों और अन्य संबन्धित लोगों से दान की गई वस्तु की रक्षा का अनुरोध किया।(इपिग्राफिका इण्डिका,1,1892:2–10) मन्दिर को दो प्रकार के अनुदान प्राप्त होते थे, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष, जो सीधे कोष में जाता था। निश्चय ही मन्दिर में निर्दिष्ट सेवाओं को बनाये रखने के लिये अनुबंधों के साथ दूसरों को दिया जाता था। आमतौर पर मन्दिर के व्यय को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, (अ) पूजा के लिये व्यय (ब) परोपकारी गतिविधियों के लिये व्यय।(डी. दयालन,1992:99)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि मन्दिर की अपनी अर्थव्यवस्था होती थी और आय स्त्रोतों के विश्लेषणों का उल्लेख जिनमें शासक ही ग्राम अनुदान दे सकता था। हालांकि राजकीय स्त्रियाँ व अन्य लोग भी शासक की आज्ञा से किसी गांव या भूमि को देवदान, देवदान–ब्रह्मदेय और पल्लीछन्दम् के रूप में जाना जाता है, जो बाद के काल में तिरूविदैयाट्टम्, तिरूनमट्टूक्कनि आदि नामों से जाना जाने लगा। कई उदाहरणों में भूमि बन्दोबस्ती को *प्रत्ययपुरम्* के साथ कुछ मिश्रित शब्दों द्वारा भी निर्दिष्ट किया गया था, उदाहरण के लिये विलाक्कु–पुरम् लैम्प के लिये भूमि बन्दोबस्ती है। भूमि अनुदान मन्दिर को दी गई कुल बन्दोबस्ती का लगभग एक चौथाई भाग है। ए. डी. 700 तक भूमि अनुदान बहुत सीमित थे जो केवल राजाओं और राजकीय लोगों द्वारा किये जा रहे थे, परन्तु चोल काल के दौरान सामान्य लोग व व्यापारिक संस्थानों ने भी भूमि दाताओं की सूची में अपना स्थान बनाया।

प्रमुख दानों में धन था जो कुल दान का लगभग एक तिहाई हिस्सा है। अधिकांश धन मन्दिरों में दीपों के रख–रखाव के लिये दिया जाता था। सभी पशुदान विभिन्न धार्मिक उद्देश्यों के लिये जैसे घी आपूर्ति हेतु दिये जा रहे थे। सरदारों और सम्माननीय लोगों और राजकीय सदस्यों के बाद चरवाहे भी जानवरों के प्रमुख दानदाताओं के रूप में प्राप्त होते हैं।

ये अनुदान या तो सीधे मन्दिर को या कुछ मध्यस्थों के माध्यम से उपज या जमा राशि पर ब्याज से मन्दिर में विशेष सेवा या सेवायें बनाये रखने हेतु दिये गये थे। मन्दिर की आय और संसाधनों की सुरक्षा के लिये विभिन्न उपाय किये गये। शिलालेखों और धर्मशास्त्रों में दान को बनाये रखनें और उसकी रक्षा करने के कार्य को दान देने के समा नही पुण्यदायी माना गया है। मन्दिर के दान के दुरूपयोग करने वालों पर जुर्माना और दण्ड भी लगाया गया था। अनुशासन सुनिश्चित करने के लिये मन्दिर मन्दिर के कोष को समय–समय पर अंकेक्षण भी किया जाता था और अधिकारियों द्वारा औचक निरिक्षण भी किया जाता था।

मन्दिर की प्रमुख व्यय वस्तुओं में पवित्र प्रसाद, विभिन्न त्योंहारों को मनाने, दीपक निरन्तर जलाये रखने, वस्त्र, आभूषण, फूल, इत्र आदि जैसी विभिन्न वस्तुओं की खरीद, ब्राह्मणों, भक्तों और तपस्वियों और अन्य लोगों को भोजन कराना मन्दिर के रख–रखाव में शामिल है। कर्मचारियों, मठों और मन्दिरो की मरम्मत और जीर्णोद्धार सहित अन्य आकस्मिक खर्च आते हैं।

विभिन्न भूमि और ग्राम अनुदानों के संचय से मन्दिर एक बड़ा जमींदार /राजस्व का केन्द्र बनकर उभरा। मन्दिरों को दी गई भूमि को हमेशा मन्दिर के पूर्ण स्वामित्व के अधीन नही माना जाता था। अधिकांश मामलों में भूमि को बिक्री/उपहार द्वारा हस्तांतरित करने का अधिकार मन्दिरों को प्रदान नही किया गया था। भूमि अनुदान या तो भूमि पर राजस्व या प्रशासनिक अधिकार हस्तांतरित करता था। मन्दिर को दान की भूमि को प्रायः इरायली (करमुक्त) भूमि कहा जाता था, जो भिन्न–भिन्न प्रकार की होती थी। मन्दिरों को दान दी गई भूमि की सिंचाई के लिये कई मामलों में दानकर्ता द्वारा स्वयं प्रावधान किये गये थे। एक जमींदार के रूप में मन्दिर ने उस क्षेत्र की कृषि अर्थव्यवस्था में एक बड़ा स्थान प्राप्त कर लिया था। इसने उन जमींदारों के मध्यस्थ का कार्य किया, जिन्होंने मन्दिरों को भूमि दान की थी और उन जमीनों के किरायेदारों और जोतने वालो के मध्य, मन्दिरों द्वारा दान की गई सबसे बड़ी सेवाओं में से एक बंजर भूमि को खेती के अधीन लाकर उसमें सुधार करना था।

मन्दिरों में विभिन्न अवसरों पर बड़ी संख्या में त्योहार मनाये जाते है। इन त्योहारों का आरम्भ व अन्त स्थल मन्दिर ही होते थे और ये त्योहार लोगों के सामूहिक रूप से एकत्र होने के स्थान के रूप में कार्य करते थे, जिससे जनसामान्य के मध्य आपसी सद्भाव को भी बढ़ाने में सहायक होते थे और मनः शान्ति भी प्राप्त होती थी और इसी तरह का एक संगम हमें भारत के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले कुंभ के माध्यम से दिखाई देता है। जिसमें हमें 4 प्रमुख कुंभ के अलावा दक्षिण भारत के कुंभकोणम् में अनेक नदियों के संगम से आयोजित होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

प्राचीनकाल से ही मन्दिर अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों और वर्ष भर चलने वाले त्योहारों के माध्यम से वृक्ष और पशु – पक्षियों का संरक्षण भी करते है, जिसका उदाहरण हमें भिन्न–भिन्न देवताओं को चढ़ाये जाने वाले पत्र, फल, फूल, व उनके विशेष वाहन के रूप में देख पाते हैं संभवतः यही कारण रहा है कि भारत भूमि पर अधिकांश जीव व वनस्पतियां आज भी संरक्षित अवस्था में प्राप्त होती हैं।

इस प्रकार, अध्ययनवधि के दौरान चोल शासक जहाँ निरन्तर युद्धरत थे वहीं समाज में सांस्कृतिक गतिविधियों को भी बढ़ावा दिया एक तरफ मन्दिर बन रहे और धर्म व संस्कृति को संरक्षित कर रहे थे तो दूसरी तरफ ज्ञान–विज्ञान को भी बढ़ावा दिया और ऐसा प्रतीत होता है कि वे समाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को संजोनें में सफल रहे यथा– धर्म, अर्थ, प्रशासन, साम्राज्य विस्तार और उनका पूर्ण सहयोग मन्दिरों ने किया। अध्ययनवधि के दौरान चोल कालीन मन्दिर एक महत्वपूर्ण धार्मिक और विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रायोजक एवं संरक्षक के रूप में दृष्टवत होते है और साथ ही मन्दिर सामाजिक–आर्थिक केन्द्र के रूप में कार्य कर रहे थे और उस काल की परिष्कृत संस्कृति के लिये मन्दिरों ने बहुत अवसर प्रदान किये और चोल शासकों ने मन्दिर संस्कृति को शिखर तक पहुँचाया और मन्दिर अर्थव्यवस्था के केन्द्र के रूप में उभरते हुए दिखाई देते ळें

संदर्भ ग्रन्थ

एपिग्राफिका इण्डिका, वॉल्यूम 8।

पी. वी. काणे, *हिस्ट्र ऑफ धर्मशास्त्र,* पार्ट 2, 1941।

एपीग्राफिका इण्डिका, वॉल्यूम 1,।

एस. आर. बालासुब्रमण्यम्, *अर्ली चोल आर्ट,* 1965।

इंसक्रिपशन, ऑफ द मद्रास प्रेसिडेन्सी।

अय्यर पी० वी० जगदीशा, *साऊथ इण्डियन फेस्टिविटिस,* 1921।

अल्टेकर ए. एस., *द राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स,* 1934।

साऊथ इण्डियन इन्सक्रिपशन, वॉल्यूम 12।

केनेथ आर. हाल, *ट्रेड एण्ड स्टेटक्राफ्ट इन द एज ऑफ चोला,* 1980।

एपिग्राफी इण्डिका, वॉल्यूम 32।

साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन, वॉल्यूम 6।

ट्रान्जैक्सन्स ऑफ द आर्किओलॉजिकल सोशायटी ऑफ साऊथ इण्डिया, 1958–59।

एपिग्राफी इण्डिका, वॉल्यूम 32।

के. इस्माइल, *कर्नाटक टेम्पलः देयर रोल इन सोसियों–इकॉनामी लाइफ,* 1984।

सी. मीनाक्षी, *एडमिनिशट्रेशन एण्ड सोशल लाइफ अण्डर द पल्लवास,* 1938।

टी. एन. सुब्रमण्यम्, *साऊथ इण्डियन टेम्पल इंसक्रिपसन,* वॉल्यूम 3।

एम. ए. दुरई रंगास्वामी, *द रिलिज़न एण्ड फिलॉसफी ऑफ तेवरम्,* 1959।

साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन, वॉल्यूम 13, 1952।

बी. वेंकटरमण, *राजराजेश्वरम्ः द पिनेकल ऑफ चोल आर्ट,* 1958।

साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन, वॉल्यूम 14, 1962।

साऊथ इण्डियन इंसक्रिपशन वॉल्यूम 19।

इपिग्राफिका इण्डिका, वॉल्यूम 1,1892।

डी. दयालन, *अर्लि टेम्पल्स ऑफ तमिलनाडु,* 1992।